15 ब्रिटिश काल एवं स्वतंत्रता पश्चात् भारत में आधुनिक शिक्षा के फैलाव पर विभिन्न सामाजिक समूहों की प्रतिक्रिया [RESPONSE OF DIVERSE SOCIAL GROUPS OF INDIA IN THE SPREAD OF MODERN EDUCATION IN THE COLONIAL AND POST-INDEPENDENCE PERIOD]

भारत में ब्रिटिश युग (Coloniar Era) का आरम्भ 1502 ई. से शुरू हुआ था। जब पुर्तगाली साम्राट ने 1905 में केरल के कोलम शहर में पहला यूरोपीय व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया।

भारत में पुर्तगालियों के आगमन उपरान्त 1510 ई. अल फ्रांसो-डी-अलबुल ने गोवा पर अधिकार कर लिया तथा यहीं से सभी यूरोपीय देश भारत में धर्म व्यापार व अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार हेतु भारत की ओर आकर्षित हो गये।

विभिन्न मिशनरियों के शैक्षिक कार्य

(1) पुर्तगाली मिशनरियों के द्वारा सम्पन्न शैक्षिक कार्य—युरोपीय जातियों में सर्वप्रथम भारत में प्रवेश करने वाले पुर्तगाली थे। पुर्तगाली व्यापारियों के साथ ईसाई मिशनरियाँ भी ईसाई धर्म व संस्कृति के प्रचार तथा शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना व संचालन के उद्देश्य से भारत में आए। सेन्ट फ्रांसिस जेवियर (St. Francis Xavier) तथा राबर्ट डी. नोविल (Robert Di Noville) प्रारंभिक मिशनरियाँ थीं। उन्होंने देश भर में पैदल घूम-घूमकर प्रचार किया तथा शिक्षण संस्थाएँ स्थापित की तथा आज भी सेन्ट फ्रांसिस की अनेक संस्थाएँ सम्पूर्ण भारत में संचालित हो रही हैं।

पुर्तगाली व्यापारियों ने गोआ में अपना व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। इन्होंने कोचीन, बम्बई, गोआ, सीलोन, हुगली, चट्गांव, दमन तथा दीव में शिक्षा संस्थाएं स्थापित कीं। इन्होंने प्राथमिक स्कूलों की स्थापना की। इन स्कूलों में इन्होंने पुर्तगाली, भाषा, गणित तथा स्थानीय शिल्पों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। 1556 में पुर्तगालियों द्वारा ही सर्वप्रथम प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना की गई, जिसके द्वारा उन्होंने ईसाई धर्म पाठ्य पुस्तकों की भारी मात्रा में छपाई की।

इन पुर्तगाली मिशनरियों ने प्राथमिक शिक्षा के साथ ही उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी कार्य किये। सर्वप्रथम 1575 में गोवा में जैसुएट कॉलेज (Jesuet College) तथा 1577 में बान्द्रा (बम्बई) में सेण्ट एनी कॉलेज (St. Anni College) की स्थापना की। इन कॉलेजों में आधुनिक शिक्षा प्रणाली को अपनाया गया तथा लैटिन भाषा, व्याकरण, तर्कशास्त्र व संगीत की शिक्षा प्रदान की गई, यहाँ पर ईसाई धर्म की भी शिक्षा प्रदान की गई। अन्ततः स्वतन्त्रता के उपरान्त तक पुर्तगालियों का प्रभुत्व सम्पूर्ण भारत में तो

नहीं किन्तु गोवा में अवश्य विद्यमान रहा, आजादी के उपरान्त भारत सरकार ने गोवा को पुर्तगालियों से खाली करवा लिया।

(2) डच ईसाई मिशनरियों के शैक्षिक कार्य—पुर्तगालियों के पश्चात 17 वीं शताब्दी में हॉलैण्ड के डच व्यापारियों ने भारत में प्रवेश किया, किन्तु इनके मिशनरियों ने विद्यालयों को ईसाई धर्म शिक्षा का केन्द्र नहीं बनाया। डच व्यापारियों ने तटीय क्षेत्रों जैसे-बंगाल में हुगली व चिनसुरा तथा मद्रास में नागापट्टम, व बिल्लीपट्टम में अपनी व्यापारिक गतिविधियों को सक्रिय रखा। इन्होंने भारतीयों व विदेशियों दोनों बच्चों को संयुक्त रूप से शिक्षा प्रदान करने के लिए प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की तथा इन्होंने पद्धति में डच भाषा, स्थानीय भाषाओं, भूगोल, गणित तथा स्थानीय कौशलों की व्यवस्था की। किन्तु यह भी भारत से शीघ्र ही पलायन कर गये।

(3) फ्रांसीसी मिशनरियों के शैक्षिक कार्य—17वीं शताब्दी के मध्य में 1667 में फ्रांसीसी व्यापारियों ने भी भारत में व्यापारिक गतिविधियों को आरंभ किया तथा अपने व्यापारिक केन्द्र पांडिचेरी, माही, यमन, कारीकल, चन्द्रनगर में स्थापित किये। इन व्यापारियों के साथ जो मिशनरियाँ आई उन्होंने फ्रांसीसी तथा स्थानीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्रदान की। इन मिशनरियों में कैथलिक शिक्षा अनिवार्य रूप से प्रदान की जाती थी। तथा कैथलिक शिक्षक को 'पादरी' कहा जाता था। फ्रांसीसी मिशनरियों ने पांडिचेरी में एक माध्यमिक विद्यालय की स्थापना की। इन मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म के साथ-साथ उपयोगी विषयों की भी शिक्षा प्रदान की जाती थी, किन्तु अन्तः कर्नाटक के युद्धों में परास्त होने के उपरान्त फ्रांसीसी भारत छोड़ने पर विवश हो गये।

(4) डेन मिशनरियों के शैक्षिक कार्य—17 वीं शताब्दी के अन्त (सन् 1689) तक अन्य यूरोपीय देश भी भारत की ओर, आकर्षित हुए तथा परिणामस्वरूप डेनमार्क निवासी डेन व्यापारी भी यहां पर अपनी व्यापारिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आए। डेन व्यापरियों ने ट्रावनकोर, त्रिचनापल्ली, सीरमपुर व तंजौर में अपने कारखाने स्थापित किये, इन्होंने भी शिक्षा के माध्यम से धर्म प्रचार के लक्ष्य को केन्द्र में रखा तथा इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की, इन विद्यालयों में स्थानीय भारतीय भाषाओं के माध्यम से ईसाई धर्म व साहित्य को शिक्षा प्रदान की जाती थी। दक्षिण भारत में मद्रास के एक विद्यालय में तमिल भाषियों के लिए बाईबिल का तमिल भाषा में अनुवाद किया गया तथा इसकी छपाई हेतु प्रिंटिंग प्रेस भी लगाया गया। डेन मिशनरियों ने ट्रावनकोर में एक 'शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय' भी खोला। 1711 ई. में इस महाविद्यालय में अंग्रेजी व विभिन्न भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षण का प्रशिक्षण दिया जाता था। उपर्युक्त व्यापक प्रयासों से ये लगभग 50,000 भारतीयों को ईसाई बनाने के लक्ष्य को प्राप्त कर सके किन्तु आगे यह व्यापार के क्षेत्र में सफल न हो सके तथा 1845 ई. में अपनी सम्पत्ति अंग्रेजों को बेचकर स्वदेश लौट गए।

(5) अंग्रेज मिशनरियों के शैक्षिक कार्य—भारत में पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी व डेन के अतिरिक्त इंग्लैण्ड के व्यापारी भी सन् 1600 में व्यापारिक उद्देश्य से आए तथा यहाँ अपनी कम्पनी स्थापित की। हमारे देश में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के विकास में सर्वाधिक योगदान, अंग्रेज ईसाई मिशनरियों का ही है। इन मिशनरियों का भारत में प्रवेश व्यापारियों के माध्यम से होता था, प्रत्येक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जहाज के साथ एक पादरी अवश्य आता था व उनका लक्ष्य ईसाई धर्म व संस्कृति का प्रचार करना था। ये ईसाई मिशनरियाँ, शिक्षा तथा दीन दुःखियों की सेवा द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु तत्पर थीं।

ब्रिटिश मिशनरियों को वास्तव में शिक्षा के कार्य में अधिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा, क्योंकि भारत में पहले से अन्य यूरोपीय मिशनरियों ने आधुनिक शिक्षा की इबारत लिख दी थी किन्तु अंग्रेज मिशनरियां इस कार्य में अत्यधिक सफल इसीलिए हुई, क्योंकि इन्होंने कूटनीति के द्वारा भारतीय जनता की भावनाओं पर आक्रमण किया, इन्होंने दीन-दुःखियों की सेवा कर उन्हें संबल प्रदान किया। तदुपरान्त अपनी भाषा, शैली, धर्म व शिक्षा को अपनाने का लक्ष्य साधा। उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि

भारतीय अपने इतिहास, ज्ञान-विज्ञान, धर्म-शैली, सभ्यता इत्यादि को केवल पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के द्वारा ही संभाल सकते हैं। इस प्रकार से कह सकते हैं कि अंग्रेजों ने भारतीय मस्तिष्कों को पूर्णतया उनके में करने का कुत्सित प्रयास किया। अंग्रेज मिशनरियों के लक्ष्य वास्तव में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के स्वार्थ की पूर्ति करते थे। इसीलिए धर्म प्रचार हेतु धन इत्यादि की पूरी व्यवस्था भी कम्पनी द्वारा ही की जाती थी।

अंग्रेज ईसाई मिशनरियों ने कलकत्ता, बम्बई व मद्रास में अनेक धर्मार्थ विद्यालय (Charity Schools) स्थापित किये। ये विद्यालय दो प्रकार के थे—अंग्रेजी व स्थानीय भाषा-शिक्षण के दो अलग माध्यम थे, किन्तु दोनों ही प्रकार के विद्यालयों में ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य थी। चेन्नई में एक एंग्लो वर्नाक्यूलर तथा संडे स्कूल (Sunday School) भी खोला गया।

1698 ई. ब्रिटिश सरकार द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी को एक आज्ञा पत्र के द्वारा ईसाई पादरियों को रखने व विद्यालयों को संचालित करने की आज्ञा दे दी गई, इस आज्ञा पत्र से उत्साह और भी बढ़ गया तथा कुछ ही वर्षों में 1731 तक अंग्रेज मिशनरियों ने बंगाल बम्बई व मद्रास में भारी मात्रा में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना कर डाली।

1757 में प्लासी का युद्ध तथा 1764 में बक्सर के युद्ध की विजय से कम्पनी को बंगाल, बिहार तथा अवध प्रान्त प्राप्त हो गए। अतः अब कम्पनी ने मिशनरियों को सहायता देने के साथ ही स्वयं ही अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। किन्तु बंगाल में शिक्षा सम्बन्धी कार्य चलते रहे।

बंगाल के सीरामपुर के तीन देसाई मिशनरी—कैरे (Carey), वार्ड (Ward), मार्शमैन (Marshmen), 'सीरमपुर' 'त्रिमूर्ति' (Serampuretretrlo) के नाम से प्रसिद्ध थे। 1808 में इन्होंने एक पुस्तिका 'हिन्दू और मुसलमानों के नाम निवेदन' (Address to Hindus and Muslims) प्रकाशित की। इसमें इन्होंने हिन्दू धर्म को अज्ञान व अन्धविश्वासपूर्ण व मुस्लिमों को धर्म गुरु मुहम्मद साहब को 'झूठा पैगम्बर' बताया। इस टिप्पणी से हिन्दू मुसलमानों की भावनाओं को ठेस पहुँची व दोनों धर्म से सम्बन्धित लोग भड़क उठे। इस समस्या को हल करने तथा जनता को शान्त करने के लिए तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिण्टो (Lord Minto) ने इन तीन मिशनरियों को बन्दी बना लिया तथा इनके (Printing Press) मुद्रण प्रेस को जब्त कर लिया। ईसाई मिशनरियों के द्वारा किए जाने वाले धर्म प्रचार पर रोक भी लगा दी गई, किन्तु इंग्लैण्ड में कम्पनी के इस निर्णय को भारी विरोध का सामना करना पड़ा, वहां पर पार्लियामेण्ट में दो दल बन गए-एक कम्पनी का समर्थक व दूसरा कम्पनी के निर्णय का विरोधी दल था। किन्तु 1813 के आज्ञा पत्र में ईसाई मिशनरियों को भारत में बिना किसी नियम कानून के व रोक के बिना आने-जाने का अधिकार प्राप्त हो गया तथा कम्पनी को ईसाई मिशनरियों को शिक्षा की व्यवस्था करने की छूट देने का आदेश दिया गया। इस आज्ञा पत्र के उपरान्त ब्रिटिश साम्राज्य की समाप्ति तक ये मिशनरियाँ भारत में विद्यालयों की स्थापना तथा ईसाई धर्म का प्रचार निरन्तर करती रही।

इस प्रकार भारत में आधुनिक शिक्षा की नींव यूरोपीय ईसाई धर्म प्रचारक तथा व्यापारियों के हाथों से डाली गई। उन्होंने कई विद्यालय स्थापित किए। प्रारम्भ में मद्रास ही उनका कार्यक्षेत्र रहा। धीरे-धीरे कार्यक्षेत्र का विस्तार बंगाल में भी होने लगा। इन विद्यालयों में ईसाई धर्म की शिक्षा के साथ-साथ इतिहास, भूगोल, व्याकरण, गणित, साहित्य आदि विषय भी पढ़ाए जाते थे। रविवार को विद्यालय बन्द रहता था। अनेक शिक्षक छात्रों की पढ़ाई विभिन्न श्रेणियाँ में कराते थे। अध्यापन का समय नियत था।

प्रायः 150 वर्ष बीतते-बीतते ईस्ट इंडिया कम्पनी राज्य करने लगी विस्तार में बाधा पड़ने के डर से कम्पनी शिक्षा के विषय वे उदासीन रही। फिर भी विशेष कारण और उद्देश्य से 1780 में कलकत्ता में 'कलकत्ता मदरसा' और 1790 में बनारस में 'संस्कृत कॉलेज' कम्पनी द्वारा स्थापित किए गए। धर्म प्रचार के विषय में भी कम्पनी की पूर्व नीति बदलने लगी। कम्पनी अब अपने राज्य के भारतीयों को शिक्षा

...आवश्यकता समझने लगी। 1813 के आज्ञापत्र के अनुसार शिक्षा में धन व्यय करने का निश्चय ...के लिए तीन नई धारायें जोड़ी गईं।

1813 का आज्ञा पत्र

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने अधिकार क्षेत्र को विस्तृत करती जा रही थी तथा अपने शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिये उन्होंने 20 वर्ष के लिये ब्रिटिश सरकार द्वारा आज्ञा पत्र प्राप्त कर लिया था। यह आज्ञा पत्र ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में प्रत्येक 20 वर्ष के उपरान्त पुनरावर्तन अथवा नवीनीकरण हेतु भेजा जाता था। 1793 में जब कम्पनी का आज्ञा पत्र पुनरावर्तन हेतु ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में पेश किया गया, तब उसके सदस्य राबर्ट विल्बर फोर्स ने चार्ल्स ग्राण्ट और ईसाई मिशनरियों का समर्थन करते हुये यह प्रस्ताव रखा कि आज्ञा पत्र में एक ऐसी धारा जोड़ दी जाये, जिससे ईसाई मिशनरियां भारत में आसानी से आ जा सकें तथा अपने धर्म का प्रचार कर सकें। किन्तु वहीं के एक सदस्य रेंडल जेक्सन ने इसका विरोध किया तथा इस कारण से यह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हो सका।

किन्तु इंग्लैण्ड की मिशनरियां चार्ल्स ग्राण्ट के नेतृत्व में बराबर यह माँग करती रहीं कि मिशनरियों को भारत जाने और वहाँ ईसाई धर्म और शिक्षा का प्रसार करने की खुली छूट दी जाये। इस माँग को तब सफलता प्राप्त हुई, जब 1793 में 20 वर्ष बाद 1813 में कम्पनी का आज्ञापत्र नवीनीकरण हेतु पुनः ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में प्रस्तुत किया गया, इस बार अधिकतम सदस्यों ने मिशनरियों द्वारा चलाये जा रहे आन्दोलन का समर्थन किया। वास्तव में यह आज्ञा पत्र भारतीयों के लिये अत्यन्त सन्देहजनक व विवादास्पद थे। एक विद्वान ने ठीक ही कहा था—

''भारत के लोग यह समझते थे कि कम्पनी के चार्टर की पुनरावृत्ति एक प्रकार से भारत को 20 वर्ष के लिये ठेके पर दे देना ही था।''

"The charter giving to twenty years lease to the East India Company was considered by the natives of India as forming them out."

—**Halliday**

इस नवीन आज्ञा पत्र में तीन नवीन धारायें जोड़ी गईं—

1. 1813 के आज्ञापत्र में एक लाख रुपया भारत में विद्या-प्रसार के लिये रखा गया और इस शैक्षिक विकास में नाममात्र का दिखावटी योगदान प्रदान किया गया। यह धन ''साहित्य के पुनरुद्धार और उन्नति के लिये और भारत में स्थानीय विद्वानों को प्रोत्साहन देने के लिये तथा अंग्रेजी प्रदेशों के वासियों में विज्ञान के आरम्भ तथा उन्नति के लिये निर्धारित किया गया।''
2. ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ब्रिटिश शासित प्रदेशों में शिक्षा के प्रसार की पूर्णतया छूट मिल गई।
3. यूरोपीय देश की किसी भी मिशनरी को भारत में प्रवेश की ईसाई धर्म, संस्कृति व शिक्षा के प्रचार-प्रसार की अब पूर्णतया अनुमति प्राप्त हो गई।

वास्तव में कम्पनी को अपनी प्रशासनिक आवश्यकताओं के लिये ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता थी, जो शास्त्रीय (Classical) और स्थानीय (Vernacular) भाषाओं के अच्छे ज्ञात हों। न्याय विभाग में संस्कृत, फारसी व अरबी भाषा के ज्ञाताओं की आवश्यकता थी, ताकि वे लोग अंग्रेज न्यायाधीशों के साथ परामर्शदाता के रूप में बैठ सकें व हिन्दू तथा मुसलमान कानून की व्याख्या कर सकें। भारतीय रियासतों के साथ पत्र व्यवहार करने हेतु राजनैतिक विभाग को फारसी पढ़े-लिखे व्यक्तियों की आवश्यकता थी। अतः स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि यह राजपत्र ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्वार्थ सिद्धि हेतु एक प्रपत्र था तथा ईसाई मिशनरियों का विजय प्रतीक था।

इस आज्ञा पत्र की भ्रामक व सन्देहास्पद भाषा के कारण जिस एक लाख रुपये की संस्तुति की गई थी, उसके व्यय का स्पष्ट आधार प्राप्त नहीं हो रहा था, क्योंकि आज्ञा पत्र में इसके व्यय से सम्बन्धित स्पष्ट दिशा-निर्देशों का पूर्णतया अभाव था। कम्पनी को भारत में शिक्षा प्रसार का अधिकार तो अवश्य प्राप्त हो गया था किन्तु भारतीय भाषा, साहित्य, निवासी आदि शब्दों की स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई थी। इन समस्त भ्रामक परिस्थितियों ने एक विवाद को जन्म दिया था जिसे 'प्राच्य पाश्चात्य विवाद' कहा गया।

आंग्ल प्राच्य विवाद
(ORIENTALIST-ANGLICIST CONTROVERSY)

1813 के आज्ञापत्र के अनुसार भारत में जनसाधारण की शिक्षा का सम्पूर्ण दायित्व कम्पनी का था तथा इस कार्य हेतु प्रतिवर्ष 1 लाख रुपये की धनराशि सुरक्षित कर दी गई थी, इसके लिये 1823 में एक 'लोक शिक्षा समिति' की स्थापना की गई। इस लोक शिक्षा की सामान्य समिति (General Committee of Public Instruction) में 10 सदस्य थे। उनमें दो दल थे, एक प्राच्य विद्या समर्थक दल था, जबकि दूसरी ओर आंग्ल दल था जो अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में समर्थन था। यह विवाद 20 वर्षों तक चलता रहा। यह विवाद विस्तृत रूप में इस प्रकार था। आंग्ल-प्राच्य विवाद के कारण में कुछ कारण निम्नलिखित थे जैसे—

1. 1813 के आज्ञापत्र की धारा 43 में वर्णित शब्दों—'साहित्य', 'भारतीय विद्वान', भारतीय भाषा व निवासी आदि की स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई थी।
2. इस राजपत्र में शैक्षिक विकास हेतु 1 लाख रुपये की धनराशि की पेशकश की गई थी।

किन्तु इन दोनों बिन्दुओं से सम्बन्धित अनेक विवादास्पद प्रश्न दोनों दलों के लोगों द्वारा उठाए जाने लगे तथा दोनों ही समूहों के द्वारा तर्कपूर्ण पक्ष प्रस्तुत किये जा रहे थे, जिसको नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था।

प्राच्य विद्या समर्थक दल का नेता एच.टी. प्रिन्सेप था तथा कुछ विद्वान जैसे-लार्ड मिण्टो, एच. विल्सन आदि भी इस वर्ग का समर्थन कर रहे थे। ये सभी लोग प्राचीन भारतीय साहित्य के समर्थक थे तथा चाहते थे कि भारत में शिक्षा का प्रचार-प्रसार भारतीय स्थानीय भाषाओं के माध्यम से हो तथा धारा 43 में वर्णित 'साहित्य' शब्द को यह अपने मतानुसार भारतीय प्राचीन साहित्य के रूप में ग्रहण कर रहे थे।

यह दल भी दो भागों में विभक्त हो गया। पहले दल का प्रतिनिधित्व भारत के हितैषी लोग कर रहे थे, जो वास्तव में भारतीयों के हित में तर्क प्रस्तुत कर रहे थे जबकि दूसरे भाग के प्रतिनिधि ब्रिटिश हित की बात कर रहे थे।

भारतीयता व उनके हितों की बात करने वाले दल के व्यक्तियों का मानना था कि भारत में उच्च भारतीय धर्म, दर्शन व साहित्य की शिक्षा दी जाए तो ही यहाँ के नागरिकों व देश का विकास हो पाएगा। उन्होंने शिक्षा के माध्यम के रूप में संस्कृत, अरबी व फारसी जैसी भाषाओं का समर्थन किया। प्रिन्सेप का तर्क था कि यदि भारतीयों को बलपूर्वक अंग्रेजी भाषा पढ़ाने का कार्य दिया जाएगा तो उनके विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाएगा।

इसके विपरीत ब्रिटिश हित साधने वाले व्यक्तियों का मत था कि भारत में पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान की शिक्षा देना अव्यावहारिक है। इसके अतिरिक्त कुछ का मत था कि भारतीय पाश्चात्य ज्ञान, भाषा, साहित्य और ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने योग्य नहीं है।

अन्ततः स्पष्ट रूप से यह प्रमाणित हो गया था कि प्राच्यवादी दल के ब्रिटिश हित साधने वाले देश भारतीय ज्ञान विज्ञान को भारत में संचालित करने के पक्ष में इसलिए थे, ताकि भारतीय जनता का विकास न हो सके तथा वह ईसाई धर्म व संस्कृति अपनाने हेतु विवश न हो सके।

पाश्चात्यवादी दल में भी भारत के हित व ब्रिटिश हित दो प्रकार के व्यक्ति सम्मिलित थे। भारत के हित को देखते हुए राजा राममोहन राय जैसे विद्वान पाश्चात्य भाषा व शिक्षा पद्धति को भारत में प्रचलित करने के पक्षधर थे, ताकि भारतीय जनता भी अंग्रेजी शिक्षा व ज्ञान विज्ञान का अध्ययन का सके। जबकि ईसाई धर्म को मानने वाले अंग्रेजों का मत था कि यदि भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा प्रदान की जाएगी, तो भारत में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी भाषा, ईसाई धर्म व पाश्चात्य संस्कृति का प्रचार होगा व भारतीय संस्कृति का अन्त हो जाएगा। क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करना कुछ महँगा था इसलिए केवल उच्च वर्ग के भारतीय ही अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे।

यह सम्पूर्ण विवाद लगभग 20 वर्षों के लम्बे काल तक चला तथा 1834 में अन्ततः इस विवाद के अन्त हेतु ब्रिटेन सरकार की ओर से लार्ड मैकाले भारत आया।

1813 के आज्ञा पत्र के उपरान्त कम्पनी के शैक्षिक कार्य

1813 के आज्ञा पत्र के अनुसार ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत में शिक्षा के प्रबन्ध से सम्बन्धित अधिकार प्राप्त हो गए थे। अतः 3 जून, 1814 को कम्पनी द्वारा हिन्दू पद्धति का विकास करने के लिए एक अधिसूचना जारी की गई। वारेन हेस्टिंग्ज ने प्रत्येक जिले में एक हिन्दू व मुसलमान कॉलेज खोलने की बात कही।

विभिन्न प्राप्तों में व्यापक रूप से कार्य किये गये। भारत में बैरिस्टर मिशन सोसाइटी, लन्दन मिशनरी सोसाइटी, वैसलियन मिशन, चर्च मिशनरी सोसाइटी, स्कॉच मिशनरी सोसाइटी इत्यादि मिशनरियों ने प्रवेश किया तथा ईसाई धर्म व शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न कार्य किये।

बम्बई क्षेत्र में किये गये कार्य—बम्बई में अमेरिकन मिशन अत्यधिक सक्रिय था। 1815 में बालकों के विद्यालय तथा 1824-26 के मध्य 9 बालिका विद्यालय स्थापित किये गये। लन्दन मिशनरी सोसाइटी ने गुजरात व कोंकण क्षेत्र में आयरिश प्रेवस्टेरियन मिशनरी सोसाइटी में काठियावाड़ में चर्च मिशनरी सोसाइटी ने बम्बई, थाना, नासिक व सूरत में अनेक स्कूल स्थापित किए।

बंगाल क्षेत्र में किए गए शैक्षिक कार्य—बंगाल क्षेत्र में बैरिस्टर मिशनरियां अत्यधिक सक्रियता से कार्यरत थीं। इन्होंने 1817 में सीरामपुर में 'सीरामपुर कॉलेज' की स्थापना की और इसे धर्म प्रचार का केन्द्र बनाया। चर्च सोसाइटी ने चिन्सूरा और इसके आस-पास 26 विद्यालय स्थापित किये व लन्दन मिशनरी सोसाइटी ने वर्द्धमान व आस-पास 10 विद्यालय स्थापित किए। 1820 में इसी मिशनरी द्वारा 'बिशप कॉलेज' की स्थापना की गई।

मद्रास क्षेत्र के शैक्षिक कार्य—मद्रास में चर्च मिशनरी सोसाइटी ने 1815 से 1830 के मध्य 107 विद्यालय स्थापित किए। ईसाई ज्ञान प्रचारक समीति ने 1817 में मद्रास में 9 स्कूल स्थापित किये। मिशनरियों ने कोयम्बटूर, विशाखापट्टनम, बिल्लारी, चिन्तूर व झेलम आदि स्थानों पर अनेक मिशनरी स्कूल स्थापित किये।

इन क्षेत्रों के अतिरिक्त इन मिशनरियों ने कुछ विद्यालय लुधियाना, जौनपुर, बनारस, आजमगढ़, आगरा, मथुरा व अजमेर में भी स्थापित किये।

गैर मिशनरियों के शैक्षिक कार्य

गैर मिशनरियों में कुछ भारतीयों का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने भारत की शिक्षा के विकास में व्यापक योगदान दिया।

राजा राम मोहन राय—राजा राममोहन राय भारतीय संस्कृति के पुजारी व पाश्चात्य संस्कृति के प्रशंसक थे। वे बंगाली तथा संस्कृत भाषा के विद्वान थे। राजा राममोहन राय ने कलकत्ता मदरसा, बनारस, संस्कृति कॉलेज खोलने के सरकार के प्रयत्नों की कड़ी आलोचना की। इन्होंने 1817 में कलकत्ता में 'हिन्दू कॉलेज' की स्थापना की। इस कॉलेज की स्थापना का मुख्य उद्देश्य हिन्दू बच्चों को उच्च स्तर की अंग्रेजी शिक्षा प्रदान करना था। इस कॉलेज में बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल, गणित व ज्योतिष विषयों को भी सम्मिलित किया गया किन्तु शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। 1815 में इन्होंने कलकत्ता विद्यालय समाज की स्थापना की व 115 विद्यालय स्थापित किए।

जी. जयनारायण घोषाल—ये भी राजा राममोहन राय के समर्थक थे। 1820 में इनके प्रयासों से 'जय नारायण स्कूल' की स्थापना की गई। इस विद्यालय में संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला, फारसी व अंग्रेजी भाषा की शिक्षा की व्यवस्था की गई।

पं. गंगाधर शास्त्री—इन्होंने स्वयं धनराशि दान देकर आगरा के संस्कृत कॉलेज को 'आगरा कॉलेज' नाम दिया व इसमें संस्कृत भाषा व साहित्य के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा व पाश्चात्य साहित्य की भी शिक्षा की व्यवस्था की गई।

सन् 1821 में ईस्ट इण्डिया ने संस्कृत व अंग्रेजी भाषा व साहित्य के अध्ययन के लिये पूना संस्कृत कॉलेज की पूना में स्थापना की।

इस प्रकार यह वह युग था जब भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली के कॉलेज व स्कूलों की स्थापना की गई।

1813 से 1833 के मध्य देशी शिक्षा की स्थिति

यह वह काल था जब भारतीय जनता दो प्रमुख मतावलम्बियों के मध्य विभाजित हो गई थी। एक ओर देशी पाठशालाएं-गुरुकुल, संस्कृत विद्यालय ग्रामीण स्कूल, मकतब और मदरसे चल रहे थे, तो दूसरी ओर ईसाई मिशनरियों व ईस्ट इण्डिया द्वारा संचालित स्कूल व कॉलेज थे। 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में कम्पनी ने अपने आधीन किये गये भारतीय क्षेत्र की सामाजिक शैक्षिक परिस्थितियों का एक अध्ययन करवाया।

इस अध्ययन द्वारा निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आए—

1. देश के सभी क्षेत्रों में शैक्षिक संस्थाएँ बड़ी मात्रा में विद्यमान थीं।
2. ब्रिटिश सरकार द्वारा अधीनस्थ शहरी क्षेत्रों में मदरसों और मिशनरी स्कूलों द्वारा शिक्षा का कार्य व संचालन किया जा रहा था, जबकि ग्रामीण क्षेत्र हिन्दू पाठशालाओं के अधीन थी।
3. छोटे-छोटे गाँवों में भी हिन्दू पाठशालाओं का बोलबाला था।
4. देशी शैक्षिक संस्थाओं में शिक्षा का माध्यम संस्कृत, अरबी व फारसी था।
5. शिक्षा संस्थाओं में हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियों का दुष्प्रभाव अर्थात्-जातिवाद प्रभावी था।
6. बालिकाओं की शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी।
7. मदरसों में केवल योग्य छात्रों को ही प्रवेश दिया जाता था।

8. साक्षरता दर लगभग 7% थी व 83% लोग निरक्षर ही थे।
9. अपने आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के कारण ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित विद्यालय प्रगति कर रहे थे, जबकि देशी पाठशालाएं पुरानी पद्धतियों व अन्य कुरीतियों के कारण अवनति पर थीं।

देशी पाठशालाओं के पतन के कारण

1813 के आज्ञा पत्र के आगमन से भारतीय शैक्षिक संस्थाओं की अवनति प्रारम्भ हो गई किन्तु इन अवनतियों के कई अप्रत्यक्ष व प्रत्यक्ष कारण थे जो निम्नलिखित हैं—

1. देशी पाठशालाओं की आर्थिक स्थिति, अंग्रेजी शैक्षिक संस्थाओं की तुलना में अत्यधिक क्षीण थी।
2. जातिवाद जैसी सामाजिक कुरीतियाँ भी देशी पाठशालाओं के पतन का कारण थीं।
3. इनका पाठ्यक्रम व पाठ्य शैली अत्यन्त प्राचीन व संकुचित थी।
4. पाठ्यक्रम में व्यावहारिकता का अभाव था।
5. अनुशासन के नाम पर देशी शिक्षा संस्थाओं में कठोर दण्ड दिये जाते थे।
6. विद्यालयों में अन्य सुविधाओं का भी अभाव था।
7. शिक्षकों का वेतन अत्यन्त कम था इसलिये वे इस कार्य से उपेक्षा महसूस कर रहे थे।
8. शिक्षक प्रशिक्षण की भी समुचित व्यवस्था नहीं थी।
9. ईसाई मिशनरियों को ब्रिटिश सरकार द्वारा समुचित मात्रा में आर्थिक अनुदान दिया जाता था, जबकि देशी संस्थाओं के प्रति सौतेला व्यवहार किया जाता था।

प्राच्य पाश्चात्य विवाद का अन्त

प्राच्य पाश्चात्य विवाद भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के कारण अत्यन्त जटिल अवस्था में पहुँच गया था तथा यह विवाद लगभग 20 वर्षों के लम्बे काल तक विभिन्न विवादों के साथ चलता रहा। 1833 के नवीन आज्ञा पत्र के उपरान्त भी यह विवाद समाप्त नहीं हुआ। अतः तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक ने मैकाले के विवरण पत्र (Macaulay's Minutes) की सहायता से इस विवाद को समाप्त कर दिया।

1833 का राजपत्र

सन् 1813 के आज्ञापत्र के उपरान्त 1833 ई. में 20 वर्षों बाद ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को नया आज्ञा पत्र जारी किया गया। इस आज्ञापत्र में कम्पनी को अपने द्वारा शासित प्रदेशों में शिक्षा की उचित व्यवस्था हेतु निम्नलिखित निर्देश दिये गये—

1. बंगाल प्रान्त के गवर्नर को परिषद में एक कानूनी सलाहकार होगा तथा अन्य प्रान्तों के गवर्नर कुछ मामलों में उसके अधीन होंगे।
2. गवर्नर जनरल की परिषद में एक कानूनी सलाहकार होगा, जो गवर्नर जनरल को किसी भी मामले में कानून से अवगत कराएगा।
3. शिक्षा हेतु 1813 के राजपत्र में जो राशि 1 लाख रुपये थी वह बढ़ाकर 10 लाख रुपये कर दी गई।

4. भारत में ब्रिटिश शासन का प्रभुत्व और अधिक बढ़ गया।
5. कम्पनी ने जाति, धर्म व वर्ग का भेद समाप्त कर सभी व्यक्तियों को शैक्षिक योग्यता व कार्यक्षमता के आधार पर समान पक्ष प्रदान करने का प्रावधान कर दिया।

इसी राजपत्र की प्रथम धारा के आधार पर लार्ड विलियम बैंटिक की सहायता एवं विवाद को निपटाने हेतु लार्ड मैकाले को कानूनी सलाहकार के रूप में भेजा गया था।

1813 के आज्ञा पत्र ने जिस दीर्घकालिक विवाद को जन्म दिया था उससे कम्पनी में दो विचार-धाराओं से सम्बन्धित व्यक्ति आपने सामने आ गए-एक प्राच्यवादी व दूसरे पाश्चात्यवादी। यह सम्पूर्ण विवाद लगभग 20 वर्षों तक चलता रहा तथा 1833 का आज्ञापत्र भी इस विवाद को सुलझा नहीं पाया।

मैकाले का विवरण पत्र (MACAULAY'S MINUTE)

आंग्ल प्राच्य विवाद को सुलझाने के लिए मैकाले ने अत्यन्त गंभीरता पूर्वक 1813 के आज्ञा पत्र का विस्तार से अध्ययन किया तथा कुछ प्रमुख विवादास्पद बिन्दुओं पर उसने अपनी स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत की।

1. 'साहित्य' शब्द की व्याख्या—मैकाले ने स्पष्ट रूप से साहित्य शब्द की व्याख्या 'अंग्रेजी साहित्य' के रूप में की। उसका कहना था कि प्राचीन भाषाओं जैसे-संस्कृत, अरबी, फारसी के साहित्य को बनाये रखने से नवीन ज्ञान में बाधा उत्पन्न होगी।

2. भारतीय विद्वान की व्याख्या—उसने भारतीय विद्वान में उन व्यक्तियों को शामिल किया, जो अंग्रेजी साहित्य जैसे—मिल्टन व शेक्सपियर, पाश्चात्य दर्शन जैसे—लॉक का दर्शन व विज्ञान जैसे—न्यूटन की खोज इत्यादि का ज्ञाता हो।

3. धनराशि के व्यय की व्याख्या—1 लाख रुपये के व्यय पर उसने कम्पनी की इच्छा को सर्वोपरि माना। कम्पनी जिस पद पर जितना भी धन व्यय करना चाहे कर सकती है।

4. शिक्षा का माध्यम—उसने कड़े शब्दों में शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी की वकालत की।

5. विज्ञान विषय की व्याख्या—विज्ञान के अन्तर्गत, पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत पढ़ाए जाने वाले विज्ञान को सम्मिलित किया गया।

6. अंग्रेजी का पक्ष—मैकाले अंग्रेजी शिक्षा का घोर प्रशंसक था तथा प्राच्य शिक्षा व संस्कृति का उपहास उड़ाता था। उसने अंग्रेजी के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए—

1. उसके अनुसार अंग्रेजी आधुनिक ज्ञान की कुंजी है व पश्चिमी भाषाओं में सर्वश्रेष्ठ है।
2. यह भाषा ज्ञान के क्षेत्र में पुनर्जीवन की स्थापना करेगी जैसे—ग्रीक व लैटिन भाषा ने इंग्लैण्ड की शिक्षा में किया।
3. भारतीय स्वयं भी प्राच्य भाषाओं के स्थान पर अंग्रेजी को बढ़ाने के इच्छुक हैं।
4. अंग्रेजी भाषा संभ्रान्त व्यक्तियों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है।
5. अंग्रेजी द्वारा भारत में भी 'अंग्रेज भारतीयों' का निर्माण किया जा सकता है।
6. अंग्रेजी के ज्ञान द्वारा ब्रिटिश सरकार को अच्छे व सस्ते दुभाषिये प्राप्त हो जाते हैं।

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर मैकाले भारतीयों में एक ऐसा वर्ग स्थापित करना चाहता था, जो कि जनता से कोई सहानुभूति न रखे तथा पृथक् रहें ताकि समाज में वर्ग संघर्ष जन्म ले ले। वह कार्य हेतु कुशल क्लर्क का कार्य कर सके तथा अंग्रेजी शासन को दृढ़ता प्रदान करने में प्रदान करे। उसका यह मत था कि भारतीयों में अंग्रेजियत फैलाकर कम्पनी को व्यापक तथा के क्षेत्र में व्यापक सफलता प्राप्त होगी। यही कारण है कि अंग्रेजी शिक्षा की प्रगति में मैकाले एक दर्शक (Torch Bearer) कहलाता है।

मैकाले के विवरण पत्र की दो विपरीत प्रतिक्रियायें हुईं. कुछ लोगों ने मैकाले की अत्यधिक प्रशंसा कुछ ने अत्यधिक विरोध। मैकाले के प्रशंसक उसे भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रवर्तक और प्रगति का मार्गदर्शक मानते हैं, तो उसके निंदक उस पर प्रचलित भारतीय भाषाओं की तथा प्राचीन भारतीय साहित्य का अपमान भारत पर अंग्रेजी शिक्षा लादने और पाश्चात्य संस्कृति के द्वारा भारत को स्थायी रूप से परतंत्र बनाने का षड्यन्त्र रचने का दोष लगाते हैं यहाँ तक कि कुछ ने उसे भारतीय राजनैतिक चेतना के लिए भी उत्तरदायी बताया है।

बैंटिक प्रस्ताव

मैकाले द्वारा प्रस्तुत किये गये विवरण पत्र को विलियम बैंटिक ने जिस प्रस्ताव द्वारा अनुमोदित था, जिसे बैंटिक प्रस्ताव कहा जाता है। बैंटिक ने इस स्वीकृति के माध्यम से भारत में मैकाले ट के समस्त प्रावधानों को कानून के रूप में मान्यता प्रदान कर दी थी। बैंटिक ने 7 मार्च, 1835 को सरकारी विज्ञप्ति के द्वारा भारत की भावी शिक्षा नीति की घोषणा निम्न रूप में की थी–

"शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति के लिये विशिष्ट रूप से लगाया जाने वाला सम्पूर्ण धन केवल ग्रेजी शिक्षा के लिये ही प्रयोग किया जाएगा।"

1813 व 1833 के आज्ञा पत्र प्राच्य पाश्चात्य विवाद निस्यन्दन सिद्धान्त और मैकाले का विवरण आपस में क्रमबद्ध रूप से इस प्रकार सम्बन्धित है, कि इन सभी के द्वारा ही भारत में अंग्रेजी शासन व शिक्षा की स्थापना को एक सुदृढ़ शृंखला के रूप में दिखाया जा सकता है। किन्तु यह शृंखला तब क अपूर्ण ही कही जाएगी। जब तक इसकी अन्तिम कड़ी के रूप में बैंटिक प्रस्ताव को इसमें जोड़ न देखा जाए। वस्तुतः यह बैंटिक प्रस्ताव (Bentick's Resolution) ही था, जिसमें इस शृंखला की समस्त कड़ियों को सार्थक स्वरूप प्रदान किया था। यदि ये सारी घटनायें (प्रयास) गर्वनर जनरल बैंटिक की सहमति (स्वीकृति) से वंचित रह जाते, तो संभवतः भारत की शिक्षा का स्वरूप आज कुछ और ही होता। यह मैकाले की कूटनीति का ही कमाल था कि उसने अपनी विशिष्ट कार्य शैली से बैंटिक को मैकाले मिनट को स्वीकृत करने को विवश कर दिया था। बैंटिक द्वारा स्वीकृति के रूप में पास किया गया प्रस्ताव ही शैक्षिक इतिहास में बैंटिक प्रस्ताव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस समस्त घटनाक्रम को अग्र रूप से प्रदर्शित कर सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मैकाले ने मैकाले मिनट पर, जिसे मैकाले ने अपनी कूटनीतिक सहायता से अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में तैयार किया था, पर तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक के हस्ताक्षर का अत्यन्त महत्त्व था।

मैकाले प्रस्ताव का प्रमुख उद्देश्य भारत में अंग्रेजी शिक्षा को लाद देना था। मैकाले ने प्राच्य पाश्चात्य विवाद को सुलझाने हेतु ही अपना विवरण पत्र प्रस्तुत किया। उस समय का तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक अत्यन्त उदार व प्रगतिशील स्वभाव का व्यक्ति था। वह कभी प्राच्य शिक्षा

का समर्थन करता तो कभी आंग्ल शिक्षा का अर्थात् वह स्वयं की भ्रम की स्थिति के कारण किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पा रहा था। मैकाले ने स्थिति को भांपते हुए एक योजना बनाई। ऐसा कहा जाता है कि उसने बैंटिक को शिकार पर ले जाकर पर्याप्त मात्रा में शराब पिलाई। जब बैंटिक शराब की खुमारी में आ गया तो मैकाले ने विवरण पत्र पर उसके हस्ताक्षर करवा लिये।

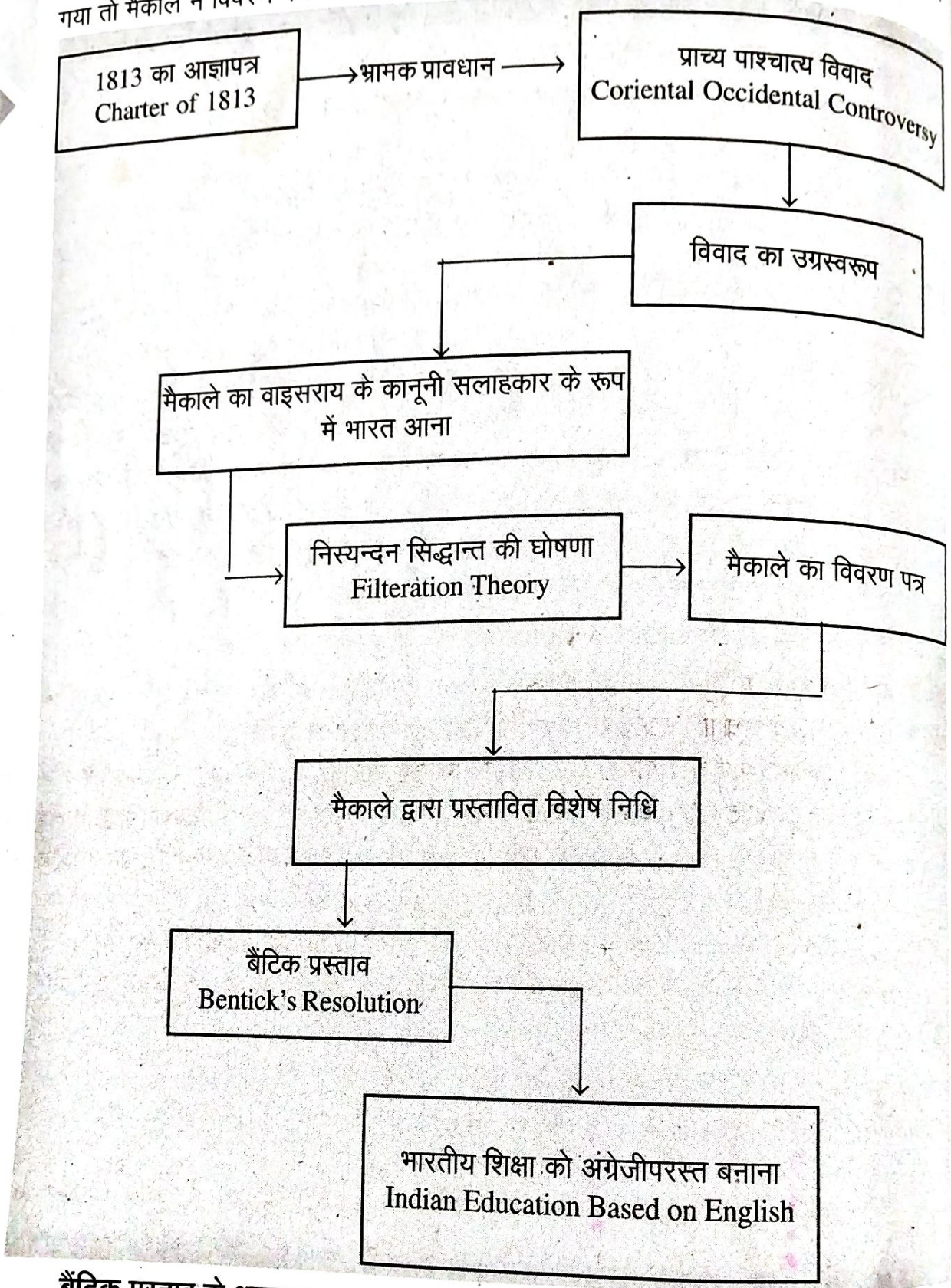

बैंटिक प्रस्ताव के अनुसार—

1. भारत में अंग्रेजी माध्यम की अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का आरम्भ हुआ।
2. विद्यालय पाठ्यचर्या में प्राच्य भाषा व साहित्य के स्थान पर पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान को स्थान प्रदान कर दिया गया।

मैकाले मिनट का वास्तव में भारतीय शिक्षा पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा, तत्कालीन प्रभावों के अन्तर्गत 1837 में लॉर्ड ऑकलैण्ड ने अंग्रेजी को राज्य के कामकाज की भाषा घोषित कर दिया, इसके पश्चात् 1844 में लॉर्ड हार्डिंग ने अंग्रेजी जानने वाले अभ्यर्थियों को नौकरी में वरीयता प्रदान की। विलियम एडम्स को 1835 में भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बैंटिक द्वारा नियुक्त किया गया। एडम्स (1789-1868) तक (27 वर्षों) रहा। वह पत्रकारिता व शैक्षिक सर्वेक्षण के माध्यम से भारत में सेवा करना चाहता था। अतः उसने अपने सुधारवादी कार्यक्रम जारी रखे। उसने 1835 से 1838 तक बंगाल की शैक्षिक परिस्थितियों का अध्ययन किया तथा महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की।

एडम का सर्वेक्षण और उसके तीन प्रतिवेदन (ADAM'S SURVEY AND ITS THREE REPORTS)

वाइसराय लॉर्ड विलियम बैंटिक ने एडम्स को बंगाल व बिहार तथा उससे सम्बद्ध क्षेत्रों में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था का सर्वेक्षण करने के लिये विशेष कमिश्नर के रूप में नियुक्त किया। इस कार्य हेतु बैंटिक ने एडम्स को 1,000 रुपये प्रतिमास की धनराशि भी प्रदान करने का निर्णय किया। वायसराय द्वारा दिये गये इस भत्ते से उत्साहित होकर एडम ने 1835 में बंगाल तथा बिहार के क्षेत्रों में संचालित हो रही शिक्षा व्यवस्था का सर्वेक्षण कार्य प्रारंभ कर दिया। उसने लगातार तीन वर्षों तक समस्त शैक्षिक गतिविधियों पर नजर रखी तथा समस्त जांच के आधार पर इन तीन वर्षों में उसने तीन प्रतिवेदन 1835, 1836 और 1838 में क्रमशः प्रस्तुत किये। यह रिपोर्ट एडम्स ने लॉर्ड ऑकलैण्ड के समक्ष उपर्युक्त तीन प्रतिवेदनों के रूप में प्रस्तुत की।

प्रथम प्रतिवेदन–1835 (First Report–1835)

एडम्स ने सर्वप्रथम जुलाई 1835 को अपनी प्रथम रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस प्रतिवेदन में उसने निम्नलिखित साक्ष्य व सूचनाएँ एकत्रित कीं—

1. उसने सम्पूर्ण बंगाल प्रान्त के विद्यालय सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत किये। उसके सर्वेक्षण के अनुसार बंगाल तथा बिहार में कुल 1 लाख विद्यालय चल रहे थे तथा बंगाल में ऐसा कोई गांव नहीं था, जहां प्राथमिक विद्यालय न हो। इस क्षेत्र में प्रति 450 व्यक्तियों पर एक विद्यालय था।
2. विद्यालय हेतु भूमि उच्च धनी व सम्पन्न नागरिकों द्वारा दान दे दी जाती थी।
3. इन विद्यालयों को भूमि दान व अन्य आर्थिक व्यय का भार जमींदार, ताल्लुकेदार व अन्य धनी वर्ग वहन करते थे।
4. विद्यालयों की स्थिति बहुत समृद्ध नहीं थी।
5. विद्यालयों में नियुक्त शिक्षकों का वेतन अत्यन्त कम था।
6. 'स्त्री शिक्षा' के नाम पर लोगों में डर व्याप्त था।
7. उस समय केवल कुछ गिने-चुने धनी व प्रगतिशील घरों में ही बालिकाओं की शिक्षा व्यवस्था का प्रबन्ध था, अन्यथा तो अन्धविश्वास जैसे कि पढ़ी लिखी कन्या विवाहोपरान्त शीघ्र विधवा हो जाने के कारण स्त्री शिक्षा डर व दुःख का पर्याय थी।
8. हिन्दू पाठशालाओं में भारतीय संस्कृति, संस्कृत व बंगला भाषा का अध्ययन कराया जाता था, जबकि मुस्लिम विद्यालयों में अरबी, फारसी भाषायें पढ़ाई जाती थीं।
9. उर्दू भाषा उस समय मुसलमानों में सामान्य रूप से प्रचलित, आम बोलचाल की भाषा थी।

10. हिन्दू धर्म के समान ही मुस्लिम धर्म के व्यक्ति भी स्त्री शिक्षा से भयभीत थे तथा वे इसे अशुभ मानते थे।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट रूप से तत्कालीन भारत में व्याप्त कुरीतियों, अन्धविश्वास व अशिक्षा का अन्दाजा लग गया था। विलियम एडम्स ने अत्यन्त उत्साह व सत्यता से इस प्रतिवेदन का निर्माण किया था। अतः सन्देह का प्रश्न उठाना कुछ कठिन है।

द्वितीय प्रतिवेदन–1836 (Second Report–1835)

विलियम एडम्स ने दिसम्बर 1836 को अपनी द्वितीय रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में उसने जिला राजशाही के थाना नत्तूर के शैक्षिक आंकड़े प्रस्तुत किये। उसने सर्वेक्षण के माध्यम से अनेक सूचनाओं का संग्रह किया, जो निम्नलिखित है—

1. थाना नत्तूर की कुल जनसंख्या 19,95,296 पर 27 विद्यालय थे।
2. कुल क्षेत्र में 405 गांव थे, जिनमें 260 छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।
3. कुल 27 विद्यालयों में 10 में बंगला, 4 में अरबी भाषा, 4 में फ़ारसी तथा 2 में बंगाली व फारसी दोनों पढ़ाई जा रही थीं।
4. 238 गांवों के 1588 परिवारों के 2380 बच्चे घर पर ही विद्यालयी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।
5. शिक्षकों का वेतन 5½ रुपये प्रतिमाह था, जो अत्यन्त कम था तथा शिक्षकों की आवश्यकताओं की पूर्ति में भी सहायक नहीं था। लेकिन ये शिक्षक मात्र श्रद्धा व समर्पण की भावना से ओत-प्रोत होने के कारण बगैर वेतन की चिन्ता करे, शिक्षण कार्य में तन्मयता से संलग्न थे।
6. स्त्री शिक्षा का अत्यन्त अभाव पूर्ववत् ही था।

यह सम्पूर्ण क्षेत्र जिसका सर्वेक्षण एड्म्स ने अपने द्वितीय प्रतिवेदन में किया, अपेक्षाकृत बौद्धिक रूप से सम्पन्न क्षेत्र माना जाता था। किन्तु यहां तक शिक्षा की वास्तविक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी, तो अन्य शेष भारत की स्थिति की कल्पना की जा सकती है।

तृतीय प्रतिवेदन–1838 (Third Report–1838)

एडम्स ने फरवरी 1838 को अपनी तीसरी तथा अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में उसने मुर्शिदाबाद, वर्धमान, तिरहुत, वीरभूमि, दक्षिणी बिहार के क्षेत्रों का सर्वेक्षण करके निम्नलिखित साक्ष्य प्रस्तुत किये—

1. उस समय इन क्षेत्रों में (5 जिलों में) 2567 विद्यालय संचालित किये जा रहे थे।
2. उपर्युक्त विद्यालय में लगभग 30,900 छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।
3. बालिकाओं के लिये अलग से 6 विद्यालय थे, जिनमें लगभग 210 छात्रायें शिक्षा प्राप्त कर रही थीं।
4. लगभग सभी विद्यालयों में बंगला, संस्कृत, हिन्दी, फारसी व अरबी भाषा का अध्ययन कराया जा रहा था।
5. उपर्युक्त भाषाओं में बंगला, संस्कृत व हिन्दी का अध्ययन हिन्दू तथा अरबी व फारसी का अध्ययन मुस्लिम करते थे।
6. कुल 8 पाठशालाओं में उपर्युक्त भाषाओं के साथ ही अंग्रेजी भाषा पढ़ाई जाती थी, जिसमें कुल 250 छात्र थे।
7. विद्यालयों की दशा अभी भी शोचनीय थी।

8. विद्यालयों में नियुक्त शिक्षकों के वेतन की व्यवस्था, धनी वर्ग के कुछ लोग स्वेच्छा से कर रहे थे।

एडम द्वारा प्रस्तावित शिक्षा योजना तथा निष्कर्ष (ADAM'S EDUCATIONAL PLANNING AND INFERENCES)

एडम ने अपने प्रतिवेदनों में सर्वेक्षण के तथ्यों और आंकड़ों के आधार पर अपनी एक शिक्षा प्रणाली प्रस्तुत की थी। इस योजना में भावी जन शिक्षा योजना में निम्नलिखित कदम उठाने के लिये कहा गया—

1. निस्यन्दन सिद्धान्त जन शिक्षा विरोधी है, अतः इसे लागू न किया जाये।
2. इस योजना का परीक्षण कुछ जिलों में किया जाये।
3. भारत में चल रहे देशी पाठशालायें, मकतब और मदरसे, राष्ट्रीय शिक्षा की प्रमुख रज्जु हैं, अतः इनके विकास द्वारा ही जन शिक्षा की व्यवस्था की जाये।
4. जन शिक्षा हेतु प्रत्येक जिले में एक जिला शिक्षा अधिकारी की नियुक्ति की जाये।
5. शिक्षकों को नियमित वेतन दिया जाये।
6. देशी स्कूलों को सरकार की ओर से आर्थिक सहायता दी जाय।
7. भारतीय तथा पाश्चात्य शिक्षा विशेषज्ञों की सहायता से प्राच्य भाषाओं में पाठ्य पुस्तकों का निर्माण कराया जाये।
8. छात्रों की परीक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाय।
9. शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये नॉर्मल स्कूलों की व्यवस्था की जाय। सेवारत अप्रशिक्षित शिक्षकों के लिये प्रतिवर्ष 3-3 माह का प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाकर 4 वर्ष के अन्दर उनका प्रशिक्षण कार्यक्रम पूरा किया जाय।
10. विद्यालयों को भूमि भी अनुदान के रूप में प्रदान की जाय।

लॉर्ड ऑकलैण्ड की शिक्षा नीति (EDUCATION POLICY OF LORD AUCKLAND)

जब 1935 में लॉर्ड ऑकलैण्ड भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया तो उसके सामने प्राच्य पाश्चात्य विवाद का निस्तारण व शिक्षा की नई नीति का निर्धारण करने की समस्यायें थीं। सर्वप्रथम उसने प्राच्य पाश्चात्य विवाद के कारणों की खोज की व उसके समाधान के उपाय खोजे। प्राच्यवादियों का मुख्य विरोध प्राच्यवादी शिक्षा के लिये अपेक्षाकृत कम धनराशि का आवंटन था, जिसे उसने प्राच्यवादी शिक्षा हेतु 31 हजार रुपये प्रतिवर्ष स्वीकृत करके सुलझाने का प्रयास किया। दूसरी तरफ पाश्चात्यवादियों को संतुष्ट करने हेतु पाश्चात्यवादी शिक्षा की व्यवस्था के लिये भी अतिरिक्त एक लाख रुपये प्रतिवर्ष देने मंजूर किये। अतः उसने 24 नवम्बर, 1839 को अपनी शिक्षा नीति की घोषणा की और उसमें यह स्पष्ट बताया कि—"सरकार के प्रयास समाज के उच्च वर्ग के व्यक्तियों में उच्च शिक्षा का प्रसार करने तक सीमित रहने चाहिये, जिनके पास अध्ययन के लिये अवकाश (समय) है और जिनकी संस्कृति छन-छनकर जनसाधारण तक पहुँचेगी।"